आचार्य जिनसेन रचित हरिवंश पुराण पर आधारित

जिनोपदेश

सम्पादन – डॉ. आचार्य विभवसागर
संकलन – क्षुल्लिका सिद्धश्री माताजी

क्षुल्लिका ह्रीं श्री माता जी

क्षुल्लिका सिद्ध श्री माता जी

ब्र. तनु दीदी

ब्र. सुरभि दीदी

ॐ

आचार्य जिनसेन रचित हरिवंश पुराण
पर आधारित

जिनोपदेश

-: मूल :-

आचार्य जिनसेन

-: सम्पादन :-

आचार्य विभवसागर जी

-: संकलन:-

क्षुल्लिका सिद्धश्री माता जी

-: प्रकाशक :-

श्रमण श्रुत सेवा संस्थान

❑ **कृति : जिनोपदेश**

❑ **मूल : आचार्य जिनसेन**

❑ **शुभाशीष : प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर जी**

❑ **सम्पादन : आचार्य विभवसागर जी**

❑ **संकलन : क्षुल्लिका सिद्धश्री माताजी**

❑ **संस्करण : प्रथम, वर्ष-2020**

❑ **प्रतियाँ : 1000**

❑ **पुण्यार्जक : - सिंघई नरेश कुमार, वंदना जैन**
डी.डी. नगर, रायपुर (छ.ग.)
- राजेश वर्षा जैन सिंघई
डी.डी. नगर, रायपुर (छ.ग.)

❑ **प्राप्ति : सौरभ जैन जयपुर (राज.) 9829178749**
टी.के.वेद इन्दौर (म.प्र.) 9425154777
प्रतिपाल टोंग्या इन्दौर (म.प्र.)9302106984
सन्मति जैन, सागर (म.प्र.) 9425462997

❑ **प्रकाशक : श्रमण श्रुत सेवा संस्थान, जयपुर(राज.)**
एवं शाखा, इन्दौर (म.प्र.)

❑ **मुद्रक** : विकास आफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा
भोपाल - 462023
फोन : 0755-2601952, 9425005624

जिनोपदेश

॥ श्री विभव गुरवे नमः ॥

समस्त गुरु वृन्दों के श्री चरणों में सादर नमोस्तु करती हूँ। एवं मेरे परम उपकारी, परम आदरणीय, विद्यावाचस्पति श्री विभव सागर जी के श्री चरण कमलों में नमोऽस्तु..............3

श्री गुरु महाराज के चरणों में रहकर जो पाया वह वह कहा करते हैं। देवदर्शन से सम्यग्दर्शन पुष्ट होता है। माँ जिनवाणी के अध्ययन से सम्यग्ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है। चारित्रधारी गुरुओं की संगति से सम्यग्चारित्र पुष्ट होता है।

आप के समक्ष प्रस्तुत ''जिनोपदेश'' यह महान ग्रन्थ हरिवंशपुराण जो श्री जिनसेनाचार्य की साधना का प्रतिफल है। इस महान ग्रंथ का स्वाध्याय मैंने गुरु आज्ञा गुरु आशीर्वाद से किया इसमें 811 गाथाओं में से 205 गाथाऐं संकलित करके गुरु करकमलों तक पहुँची उसमें से 71 गाथाओं को ''जिनोपदेश'' नामक ग्रंथ प्रकाशन की स्वीकृति प्रदान कर जिनशासन पर महान उपकार किया।

संघस्थ माता जी ह्रीं श्री, तनु दीदी, सुरभि दीदी एवं डॉ. राखी रायपुर ने आलेखन में सहयोग किया श्रावक श्रेष्ठी श्री नरेश जैन डी.डी. नगर रायपुर निवासी को प्रकाशन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आपके परिवारों को धर्मवृद्धि हेतु आशीर्वाद।

श्री गुरु चरणकमलेभ्य: नमोऽस्तु

सिद्धश्री

17/11/2019

बिलासपुर (छ.ग.)

आशीर्वाद

आचार्य विभवसागर

हमारी धर्मवत्सला मंत्र पुत्री स्वाध्याय शीला, श्रुताराधिका सुशिष्या क्षुल्लिका श्री 105 सिद्धश्री माताजी ने श्रुत भक्ति, गुरु भक्ति पूर्वक श्री हरिवंश पुराण का गहन अध्ययन किया।

जिनसेनाचार्य के सरस, सरल, हृदयग्राही, मनोहारी, हितकारी श्लोकों का चयन कर ''जिनोपदेश'' शास्त्र का संकलन किया। जिसके सम्पादन का सौभाग्य मुझे दिया। मैंने श्रुत सेवा का यह अनुष्ठान भक्तिभाव से किया। माताजी के लिए शुभाशीर्वाद।

यह सम्पादित कृति ''जिनोपदेश'' भव्य जीवों के हितार्थ तथा जिनसेनाचार्य के प्रति महान आदर भाव को प्रकट करने के लिए श्रुतप्रेमी दानवीर परिवार द्वारा प्रकाशित हो रहा उन्हें मेरा आशीर्वाद।

प्रकाशक संस्थान के लिए
शुभाशीष

निवाई
20.10.2019

प्रस्तावना

आचार्य विभवसागर

प्रस्तुत कृति ''**जिनोपदेश**'' आचार्य जिनसेन स्वामी रचित हरिवंश पुराण से संचित हैं। इसमें उपदेशात्मक भावों को दर्शाने वाले सहज, सरल, सुबोध, मधुर गेय शैली में निबद्ध श्लोकों का संकलन है। अतः ग्रन्थ का नाम जिनोपदेश है।

उद्देश्य :-

संकलन का मुख्य उद्देश्य हरिवंश पुराण समागत महत्त्वपूर्ण, भावपूर्ण, सरलतम श्लोकों को संक्षिप्त लघूत्तम संग्रह कर बाल गोपाल में आचार्य जिनसेन का बहुमान पूर्ण परिचय देना हैं। एवं रचना को जन–जन के कण्ठहार बना देना है। तथा विशालकाय महाग्रन्थ राज हरिवंश पुराण के प्रति आकर्षित करना है।

कार्य :-

प्रस्तुत कार्य का भाव मेरे मानस पर अनेक बार आया। जिज्ञासा जागी कि पूज्यपादाचार्य के इष्टोपदेश को भांति यदि सरलतम संक्षेपतम कोई अन्य ग्रन्थ हों तो वह भी आदरणीय होंगे। फलतः हमारी स्वाध्यायशीला, संयम पुत्री क्षुल्लिका सिद्ध श्री माताजी ने यह कार्य किया।

विषय वस्तु परिचय :-

सर्वप्रथम मंगलाचरण में जिनशासन को मंगल स्वरूप बताया। द्वितीय श्लोक में सिद्ध स्वरूप। तृतीय में समय का प्रभाव। अग्रिम श्लोंकों में पराधीनता के दुःख। मोक्ष सुख के लिए तपोवन प्रवेश की महिमा, मोक्षमार्ग प्रवेश, मोक्ष स्थान का प्रवेश द्वारा निर्ग्रंथपना। शोक त्याग का उपदेश, गुरु सेवा के लाभ, अन्न धर्म का साधन, धर्म सुखों की खान। दान, पूजा, तप, शील इन चार प्रकार से गृहस्थ धर्म का पालन करने का उपदेश भी दिया।

धन वैभव रूप लक्ष्मी को कीचड़ की उपमा देकर चित्त को मलिनकारी बताया। तथा आगे लक्ष्मी अग्नि तुल्य दुःख स्पर्शी, प्रीतिनाशक, सन्ताप कारक बताया। बन्धुप्रेम को धन से अधिक श्रेष्ठ बताकर कहा धन की अपेक्षा भातृप्रेम रखो सुख भी ठहरेगा और धन भी।

मोह जागना आत्मपतन का सूचक दूत है। सुखी होने का सरल उपाय। पुण्योदय से अतिथि आगमन आदि का वर्णन कर मनुष्य पर्याय की दुर्लभता का मार्मिक वर्णन है। अनंतर वैराग्य की प्रेरणा दी गयी। पश्चात् वैयावृत्ति की प्ररेणा एवं महत्त्व दर्शाया तथा धर्मात्मा की उपेक्षा करना आत्मधर्म का नाश करना है। यह कथन कर धर्मात्मा रक्षा में धन की सफलता है। तथा धर्मात्मा का आदर धर्म का आदर करना है यह भी कहा। आगे बोधि(रत्नत्रय की प्राप्ति)को दुर्लभ कहा। तथा बोधि लाभ को मुक्ति का उपाय भी बताया।

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	मंगलाचरण	01
2.	सिद्ध परमात्मा का स्वरूप	01
3.	द्रव्य क्षेत्र पर काल का प्रभाव, उदाहरण	02
4.	इन्द्रिय सुख परा-धीन सुख दुख रूप	02
5.	दीक्षा क्यों?	03
6.	मोक्षमार्ग प्रार्थना	03
7.	शोक त्याग का उपदेश	04
8.	गुरु सेवा का फल	04
9.	धर्म का साधन आहार दान	05
10.	धर्म सुखों की खान	05
11.	चार प्रकार का गृहस्थ धर्म	06
12.	धन प्रेम नाशक है।	06
13.	लक्ष्मी सदा दु:खदायी	07

14.	संतोषी सदा सुखी	07
15.	स्वजन विरोध दु:खकारक	08
16.	मोह की प्रबलता यश नाशक	08
17.	सुखी होने का सरल उपाय	09
18.	पुण्योदय से अतिथि आगमन	09
19.	मनुष्य पर्याय की दुर्लभता	10
20.	वैराग्य-प्रेरणा	10
21.	धर्म साधन के लिए तन रक्षा प्रेरणा	11
22.	वैयावृत्ति प्रेरणा	11
23.	वैयावृत्ति प्रेरणा	12
24.	धर्मात्मा की उपेक्षा निजधर्म का घात	12
25.	धन की सफलता	13
26.	धर्मात्मा की रक्षा का सन्देश	13
27.	धर्मात्मा का आदर धर्म का आदर	14
28.	बोधि दुर्लभ का स्वरूप	14
29.	बोधि लाभ मुक्ति का उपाय	15
30.	कृत्कृत्य दशा का उपाय	15
31.	मानस दु:ख शारीरिक दु:ख से अधिक	16

32.	सत्यभाषी का आपदा रहित जीवन	16
33.	शुभ ही उपकार है।	17
34.	दर्शन बनाये पुण्यवान	17
35.	शास्त्राभ्यास सब व्यसनों का नाशक	18
36.	गुरु-वचन पालक के जीवन में अनर्थ नहीं	18
37.	धर्म प्रदाता मनुष्य ही महान उपकारी	19
38.	गुरु को भूलना पाप	19
39.	धूर्तों से कौन ठगा जाता है।	20
40.	कषाय करना विषपान समान	20
41.	भव, तन, भोग त्याग प्रेरणा	21
42.	एकत्व भावना	21
43.	आत्महित करने वाला धीर	22
44.	देवों का चिन्तन	22
45.	जैन धर्म प्रशंसा	23
46.	परिवर्तनशील संसार	23

47.	परिवर्तनशील संसार	24
48.	मनोविजेता ही कर्मविजेता	24
49.	दोष कथन से निधत्ति, निकाचित कर्म का बन्ध	25
50.	पापोपदेशी परभव में दुःखी	25
51.	पुण्य कथा सुनना कल्याण कारी और पाप कथा श्रवण अकल्याणकारी	26
52.	भाग्योदय में पुरुषार्थ सफलता	26
53.	भाग्य क्षीण होने पर पुरुषार्थ निष्फलता	27
54.	आत्म सिद्धि	27
55.	आत्म स्वतंत्रता	28
56.	विद्या-वैराग्य से सिद्धि	28
57.	नीच गौत्र के कारण	29
58.	उच्च गौत्र के कारण	29
59.	समाधि मरण शोक का विषय नहीं	30
60.	समाधि प्रेरणा	30
61.	समाधि मरण प्रशंसा	31

62.	प्रशंसनीय तप और मरण का कथन	31
63.	हिंसा का फल भव-भव में	32
64.	कषाय संसार वर्द्धक	32
65.	क्रोधी निज अपकार करे	33
66.	मोह शत्रु महाबैरी	33
67.	स्वोपकारी सर्वश्रेष्ठ	34
68.	क्षमाधारण की प्रेरणा	34
69.	अपना कर्म ही सुख-दुख देता	35
70.	निज कर्मानुसार फल	35
71.	देवगण सुख देने एवं दुःख हरने में असमर्थ	36

मंगलाचरण

सिद्धं ध्रौव्य व्ययोत्पाद, लक्षणद्रव्यसाधनम्।
जैनं द्रव्याद्यपेक्षातः, साद्यनाद्यथ शासनम्॥ 1॥

अर्थ - जो वादी-प्रतिवादियों के द्वारा निर्णीत होने के कारण सिद्ध है- उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य लक्षण से युक्त जीवादि द्रव्यों को सिद्ध करनेवाला है, और द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा अनादि तथा पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा सादि है ऐसा जिनशासन सदा मंगलरूप है।

सिद्ध परमात्मा का स्वरूप

सद्दृग्बोधक्रियोपाय,साधितोपेय सिद्धयः।
सिद्धास्तत्र प्रसिद्धात्म,सिद्धिक्षेत्रमधिष्ठिताः॥2॥

अर्थ - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी उपाय के द्वारा जिन्होंने प्राप्त करने योग्य मुक्ति को प्राप्त कर लिया है तथा जो स्वरूप को प्राप्त कर सिद्धिक्षेत्र- लोक के अग्रभागपर तनुवात- वलय में स्थित हो गये है वे सिद्ध कहलाते हैं।

1. ह.पु.1/1 2. ह.पु.67/3

द्रव्य क्षेत्र पर काल का प्रभाव, उदाहरण

इदानीं छिन्नभिन्नध, न क्षरन्तीक्षवो रसम्।
यान्ति कालानुभावेन,मृदवोऽपि कठोरताम्॥ 3॥

अर्थ - परन्तु इस समय वे इक्षुवृक्ष छिन्न-भिन्न होने पर भी रस नहीं देते है सो ठीक ही है क्योंकि समय के प्रभाव से कोमल कठोरता को प्राप्त हो जाते हैं।

इन्द्रिय सुख परा-धीन सुख दुख रूप

धिग् अन्तो: परतन्त्रस्य, सुखानुभवनस्पृहाम्।
पराधन नृ सक्तस्य, यन्मनः सतताकुलम्॥4॥

अर्थ - पराधीन प्राणी को जो सुखोपभोग की इच्छा है उसे धिक्कार है क्योंकि पराधीन मनुष्य का मन निरन्तर आकुल रहता है।

3. ह.पु.28/9

4. ह.पु.59/9

दीक्षा क्यों?

तस्मात् सांसारिकं सौख्यं, त्यक्त्वान्ते दुःखदूषितम्।
मोक्ष सौख्यपरिप्राप्त्यै, प्रविशामि तपोवनम्॥5॥

अर्थ – इसलिए जो अन्त में दुःख से दूषित है ऐसे सांसरिक सुख को छोड़कर मैं मोक्ष– सुख की प्राप्ति के लिए तपोवन में प्रवेश करता हूँ।

मोक्षमार्ग प्रार्थना

चतुर्गति महादुर्गे, दिग्मूढस्य प्रभो दृढम्।
मार्ग दर्शय लोकस्य, मोक्षस्थान प्रवेशकम्॥ 6 ॥

अर्थ – हे प्रभो! यह संसार चतुर्गति रूप महावन में दिशाभ्रान्त हो रहा है इसे आप मोक्ष स्थान में प्रवेश करानेवाला मार्ग दिखलाइए।

5. ह.पु.61/9

6. ह.पु.66/9

शोक त्याग का उपदेश

ततः प्राह प्रजास्तत्र, शोकं त्यजत भोः प्रजाः।
संयोगो हि वियोगाय, स्वदेहैरपि देहिनाम्॥7॥

अर्थ – तदनन्तर भगवान ने प्रजा से कहा कि हे प्रजाजनो! तुम लोग शोक छोड़ो क्योंकि प्राणियों का अन्य वस्तुओं की बात जाने दो, अपने शरीर के साथ भी जो संयोग है वह वियोग के लिए ही है।

गुरु सेवा का फल

योऽगो विद्याधराधारी, विजयार्द्धि इतीरितः।
सोऽपि ताभ्यां ततो लब्धः, किंन स्याद् गुरुसेवया॥8॥

अर्थ – और जो विद्याधरों का निवासभूत विजयार्ध नामक पर्वत है वह भी उन दोनों ने धरणेन्द्र से प्राप्त किया सो ठीक है क्योंकि गुरु सेवासे क्या नहीं होता है?

7. ह.पु.94/9

8. ह.पु.131/9

धर्म का साधन आहारदान

प्राणाधिष्ठानतन्निष्ठं, शरीरं धर्मसाधनम्।
प्राणैरधिष्ठितः प्राणी, प्राणश्चान्नैरधिष्ठिताः॥9॥

अर्थ – धर्म का साधन शरीर है और शरीर प्राणों का आधार होने से प्राणों पर निर्भर है। प्राणी प्राणों से अधिष्ठित हैं अर्थात् प्राणों के द्वारा जीवित है और प्राण अन्न से अधिष्ठित है अर्थात् अन्न से ही प्राण सुरक्षित रहते हैं। इसलिए परम्परा से अन्न भी धर्म का साधन है।

धर्म सुखों की खान

जिनेन्द्रोऽथ जगौ धर्मः, कार्यः सर्वसुखाकरः।
प्राणिभिः सर्वयत्नेन, स्थितः प्राणिदयादिषु॥10॥

अर्थ – अथानन्तर जिनेन्द्र भगवान् ने कहा कि समस्त प्राणियों को जीव दया आदि कार्यों में स्थित धर्म पूर्ण प्रयत्न से करना चाहिए क्योंकि धर्म ही समस्त सुखों की खान है।

9. ह.पु.138/9

10. ह.पु.4/10

चार प्रकार का गृहस्थ धर्म

दान पूजातपोशील, लक्षणश्च चतुर्विधः।
त्यागजश्चैव शारीरो, धर्मो गृहनिषेविणाम् ॥ 11 ॥

अर्थ - दान, पूजा, तप और शील यह गृहस्थ का चार प्रकार का शारीरिक धर्म है- शरीर से करने योग्य है। गृहस्थ का यह चतुर्विध धर्म त्याग से ही उत्पन्न होता है।

धन प्रेम नाशक है।

स्वच्छानामनुकूलानां, संहतानां नृचेतसाम्।
विपर्यासकरी लक्ष्मी, धिक् पङ्कर्द्धिमिवाम्भसाम्॥12॥

अर्थ - जिस प्रकार कीचड़ स्वच्छ, अनकूल, एवं मिले हुए जल को विपरीत मलिन कर देता है उसी प्रकार यह लक्ष्मी स्वच्छ, अनुकूल और मिले हुए मनुष्यों के चित्त को विपरीत कर देती है अतः इसे धिक्कार हो।

11. ह.पु.8/10

12. ह.पु.92/11

लक्ष्मी सदा दुःखदायी

मूलमध्यान्तदुःस्पर्शा, सर्वदाग्निशिखामिव।
भास्वरामपि धिग्लक्ष्मीं,सर्वसंतापकारिणीम्॥13॥

अर्थ – जिस प्रकार अग्नि की शिखा सदा मूल, मध्य और अन्त में दुःखकर स्पर्श से सहित है तथा दैदीप्यमान होकर भी सबको सन्ताप करने वाली है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी आदि, मध्य अन्त में दुःखकर स्पर्श से सहित है– सब दशाओं में दुःख देने वाली है तथा दैदीप्यमान–तेज तर्राटे से युक्त होने पर भी सबको सन्ताप उत्पन्न करते है।

संतोषी सदा सुखी

मर्त्यलोके सुखं तद् यच्चित्तसंतोषलक्षणम्।
सति बन्धुविरोधे हि,न सुखं न धनं नृणाम्॥14॥

अर्थ – मनुष्य लोक में सुख वही है जो चित्त को सन्तुष्ट करने वाला हो परन्तु बन्धुजनों में विरोध होने पर मनुष्यों को न सुख प्राप्त होता है और न धन ही उनके पास स्थिर रहता है।

13. ह.पु.95/11

14. ह.पु.96/11

स्वजन विरोध दुःख कारक

जनयन्ति नृणां भोगाः, प्रतिकूलेषु बन्धुषु।
शीतज्वराभिभूतानां, शीतस्पर्शा इवासुखम्॥15॥

अर्थ – जिस प्रकार शीत ज्वर से आक्रान्त मनुष्यों के लिए शीतल स्पर्श दुःख उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार बन्धुजनों के विरुद्ध होने पर भोग भी मनुष्यों के लिए दुःख उत्पन्न करते हैं।

मोह की प्रबलता यश नाशक

यशःप्रकाशमानोऽपि, लोकज्ञः सोऽत्यमुह्यत।
तमः पतनकाले हि, प्रभवत्यपि भास्वतः॥16॥

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि देखो राजा सुमुख यश से प्रकाशमान था तथा लोक व्यवहार का ज्ञाता था फिर भी अत्यन्त मोह को प्राप्त हो गया सो ठीक ही है क्योंकि सूर्य के पतन का जब समय आता है तब अन्धकार की प्रबलता हो ही जाती है।

15. ह.पु.97/11 16. ह.पु.40/14

सुखी होने का सरल उपाय

संविभज्य मनोदुःखं सख्यौ प्राणसमे सुखी।
संपद्यते जनः सर्व, इतीयं जगतः स्थितिः ॥17॥

अर्थ – सभी लोग प्राणतुल्य मित्र के लिए मन का दुःख बाँटकर सुखी हो जाते हैं यह जगत् की रीति है।

पुण्योदय से अतिथि आगमन

(द्रुतविलम्बित छन्द)

अवततार कदाचिदचिन्तितो,
निधिरिवोरुतपोनि-धिरञ्चितः।
नृपगृहं वरधर्ममुनिर्गृहान
नतिथिरेति हि भूरिशुभोदये॥18॥

अर्थ – तदनन्तर किसी समय अचिन्तित निधि के समान उत्कृष्ट तप के भण्डार वरधर्म नाम के पूज्य मुनि राजा सुमुख के घर आये सो ठीक ही है क्योंकि अत्यधिक पुण्य का उदय होने पर ही अतिथि घर आते हैं।

17. ह.पु.57/14

18. ह.पु.6/15

मनुष्य पर्याय की दुर्लभता

इत्यनेकविकल्पेऽस्मिन् संसारे सारवर्जिते।
मोक्ष साधनतः सारं, मानुष्यं दुर्लभं च तत्॥19॥

अर्थ - इस प्रकार यह असार संसार अनेक विकल्पों से भरा हुआ है। इसमें मोक्ष का साधक होने से मनुष्य पर्याय ही सार है परन्तु वह अत्यन्त दुर्लभ है।

वैराग्य-प्रेरणा

दुष्कर्मोपशमाल्लब्ध्वा, तन्मानुष्यं कथंचन।
यत्नो भवविरक्तेन, विधेयो मुक्तये विदा॥20॥

अर्थ - दुष्कर्मों का उपशम होने से यदि किसी तरह मनुष्य पर्याय प्राप्त हुई है तो बुद्धिमान् मनुष्य को संसार से विरक्त होकर मुक्ति प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

19. ह.पु.94/18

20. ह.पु.95/18

धर्म साधन के लिए तन रक्षा प्रेरणा

धर्मसाधनमाद्यं हि, शरीरमिह देहिनाम्।
तस्य धारणमाधेयं, यथाशक्ति च शासने॥ 21॥

अर्थ – इस संसार में शरीर ही प्राणियों का सबसे पहला धर्म का साधन है इसलिए यथाशक्ति उसकी रक्षा करना चाहिए। यह आगम का विधान है।

वैयावृत्ति प्रेरणा

सम्यग्दृष्टिरशेषोऽपि, मन्दग्लानादिरादरात्।
पर्युपासनया नित्य, मुपचर्यः सुदृष्टिना॥ 22॥

अर्थ – मन्द शक्ति अथवा बीमार आदि जितने भी सम्यग्दृष्टि हैं, सम्यग्दृष्टि मनुष्य को उन सबकी वैयावृत्य द्वारा निरंतर सेवा करनी चाहिए।

21. ह.पु.143/18

22. ह.पु.144/18

वैयावृत्ति प्रेरणा

अतः सर्वात्मना भाव्यं, यथास्वं स्वहितैषिणा।
वैयावृत्योद्यतेनाऽत्र,यतिना गृहिणा तथा॥23॥

अर्थ – इसलिए आत्महित चाहने वाले चाहे मुनि हो चाहे गृहस्थ उसे सब प्रकार से अपनी शक्ति के अनुसार वैयावृत्य करने में उद्यत रहना चाहिए।

धर्मात्मा की उपेक्षा निज धर्म का घात

प्रतीकारसमर्थोऽपि, यत्सुदृष्टिमुपेक्षते।
व्याधिक्लिष्टमसौ नष्टः,सम्यक्त्वस्यापबृंहकः॥24॥

अर्थ – जो प्रतिकार करने में समर्थ होने पर भी रोग से दुःखी सम्यग्दृष्टि की उपेक्षा करते है वह पापी है तथा सम्यग्दर्शन घात करने वाला है।

23. ह.पु.153/18

24. ह.पु.145/18

धन की सफलता

तदेव हि धनं तस्य, वपुर्वा सर्वथा मतम्।
यद्यस्य शासनस्थानां, यथास्वमुपयुज्यते॥25॥

अर्थ – जिसका जो धन अथवा जो शरीर सहधर्मी जनों के उपयोग में आता है यथार्थ में वही धन अथवा शरीर उसका है।

धर्मात्मा की रक्षा का संदेश

शक्तस्योपेक्षमाणस्य, सद्दृष्टि जनमापदि।
का वा कठिनचित्तस्य,जिनशासनभक्तता॥26॥

अर्थ – जो समर्थ होकर भी आपत्ति के समय सम्यग्दृष्टि की उपेक्षा करता है उस कठोर हृदय वाले के जिनशासन की क्या भक्ति है? कुछ भी नहीं है।

25. ह.पु.147/18 26. ह.पु.148/18

धर्मात्मा का आदर धर्म का आदर

सम्यक्त्वशुद्धिशुद्धे तु, जैने भक्तिविलोपने।
पुंसो मिथ्याविनीतस्य,का वा दर्शनशुद्धिता॥27॥

अर्थ – जो सम्यग्दर्शन की शुद्धता से शुद्ध सहधर्मी की भक्ति नहीं करता है वह झूठ-मूठ का विनयी बना फिरता है उसके सम्यग्दर्शन की शुद्धि क्या है।

बोधि दुर्लभ का स्वरूप

बोधिलाभनिमित्ताया, दृष्टि शुद्धेर्विबाधने।
पुनर्बोधिपरिप्राप्ति, र्दुर्लभा भवसंकटे॥28॥

अर्थ – यदि बोधि की प्राप्ति में निमित्तभूत दर्शनविशुद्धि में बाधा पहुँचायी जाती है तो फिर इस संसार के संकट में पुनः बोधि की प्राप्ति दुर्लभ ही समझनी चाहिए।

27. ह.पु.149/18

28. ह.पु.150/18

बोधि लाभ मुक्ति का उपाय

बोधिलाभपरिप्राप्ता,वसत्यां मुक्तिसाधनम्।
कुतो वृत्तमभावेऽस्य,कुतो मुक्तिस्तदर्थिन:।।29।।

अर्थ - यदि बोधि की प्राप्ति नहीं होती है तो मुक्ति का साधनभूत चारित्र कैसे हो सकता है? और जब चारित्र नहीं है तब मुक्ति के अभिलाषी मनुष्य को मुक्ति कैसे मिल सकती है?

कृत्कृत्य दशा का उपाय

मुक्त्यभावे कुत: सौख्य, मनन्तमनपायि च।
सौख्याभावे कुत: स्वास्थ्यं, स्वास्थ्याभावे कुत:कृती।।30।।

अर्थ - मुक्ति के अभाव में अनन्त एवं अविनाशी सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? सुख के अभाव में स्वास्थ्य कैसे मिल सकता है? और स्वास्थ्य के अभाव में यह जीव कृत्य-कृत्य कैसे हो सकता है?

29. ह.पु.151/18

30. ह.पु.152/18

मानस दुःख शारीरिक दुःख से अधिक

आधिर्व्याधिरिवाल्पोऽपि, हृदये कृतसंनिधिः।
प्राणकारणमप्यन्नं, प्रतिहन्ति न संशयः॥31॥

अर्थ - क्योंकि हृदय में रहने वाली छोटी-सी मानसिक व्यथा भी शारीरिक व्यथा के समान, प्राण-रक्षा का कारण जो अन्न है उसे भी छुड़ा देती है उसमें संशय नहीं है। भावार्थ- मानसिक पीड़ा के कारण मनुष्य खाना-पीना भी छोड़ देता है।

सत्यभाषी का आपदा रहित जीवन

तदा हि पुरुषो लोके, प्रत्यावायेन युज्यते।
यदा प्रच्यवते वाक्यात्, न तु वाक्यस्य पालकः॥32॥

अर्थ - क्योंकि लोक में मनुष्य तभी आपत्ति से युक्त होता है जब वह अपने वचन से च्युत हो जाता है। अपने वचन का पालन करनेवाला मनुष्य लोक में कभी आपत्ति युक्त नहीं होता।

31. ह.पु.25/19

32. ह.पु.50/20

शुभ ही उपकार है।

शुद्धं दर्शयता भावं, वद किं न कृतं त्वया।
तदेवोपकृतं पुंसां, यत् सद्भावदर्शनम्॥33॥

अर्थ – कहिए शुद्ध अभिप्राय को दिखाते हुए आपने मेरा क्या नहीं किया है? मनुष्यों को जो शुभ भाव को दिखाना है वही तो उनका उपकार है।

दर्शन बनाये पुण्यवान

पुण्यवान् ननु पूज्योऽहं, तत्तवानघदर्शनम्।
जातं मे सुलभं लोके, सामान्यनरदुर्लभम्॥34॥

अर्थ – हे निष्पाप! निश्चय से मैं आज पुण्यवान् और पूज्य हुआ हूँ क्योंकि संसार में अन्य सामान्य मनुष्यों के लिए दुर्लभ आपका दर्शन मुझे सुलभ हुआ है।

33. ह.पु.32/21

34. ह.पु.33/21

शास्त्राभ्यास सब व्यसनों का नाशक

शास्त्रव्यसनिनो मेऽभून्नात्मस्त्रीविषयेऽपि धीः।
शास्त्रव्यसनमन्येषां,व्यसनानां हि बाधकम्॥35॥

अर्थ – क्योंकि मुझे शास्त्र का व्यसन अधिक था इसलिए अपनी स्त्री के विषय में मेरी कुछ भी रुचि नहीं थी सो ठीक ही है क्योंकि शास्त्र का व्यसन अन्य व्यसनों का बाधक है।

गुरु–वचन पालक के जीवन में अनर्थ नहीं

गुरुवाक्यामृतं मंत्रं, सदाभ्यस्यति यो जनः।
तमनर्थग्रहा दूराद्, ढौकन्ते न कदाचन॥36॥

अर्थ – जो मनुष्य गुरुजनों के वचनामृतरूप मन्त्र का सदा अभ्यास करता है अनर्थरूपी ग्रह सदा उनसे दूर रहते हैं, कभी उसके पास नहीं आते।

35. ह.पु.39/21

36. ह.पु.63/21

धर्म प्रदाता मनुष्य ही महान उपकारी

पापकूपे निमग्नेभ्यो, धर्महस्तावलम्बनम्।
ददता कः समो लोके,संसारोत्तारिणा नृणाम्॥37॥

अर्थ – जो पाप रूपी कुँए में डूबे हुए मनुष्यों के लिए धर्म-रूपी हाथ का सहारा देता है तथा संसार-सागर से पार करनेवाला है उस मनुष्य के समान संसार में मनुष्यों के बीच दूसरा कौन उपकारी है?

गुरु को भूलना पाप

अक्षरस्यापि चैकस्य, पदार्धस्य पदस्य वा।
दातारं विस्मरन् पापी, किं पुनर्धमदेशिनम्॥38॥

अर्थ – एक अक्षर, आधे पद अथवा एक पद को भी देने वाले गुरु को जो भूल जाता है वह भी जब पापी है तब धर्मोपदेश के दाता को भूल जाने वाले मनुष्य का तो कहना ही क्या है?

37. ह.पु.155/21

38. ह.पु.156/21

धूर्तों से कौन ठगा जाता है।

प्रमादालस्यदर्पेभ्यो, ये स्वतो नागमेक्षिणः।
ते शठैर्विप्रलभ्यन्ते, दृष्टादृष्टार्थगोचरे॥39॥

अर्थ – ठीक ही है जो मनुष्य प्रमाद, आलस्य और अहंकार के कारण स्वयं शास्त्रों को नहीं देखते हैं वे देखे-अनदेखे पदार्थों के विषय में धूर्तों के द्वारा ठगे जाते हैं।

कषाय करना विषपान समान

अहो कषायपानस्य वैषम्यं यद्विरोधि नः।
सम्यक्त्वौषधिपानस्य, जातमत्यन्तदूषणम्॥40॥

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि अहो! कषायरूपी कषैले शरबत की बड़ी विषमता है क्योंकि वह सम्यग्दर्शनरूपी औषधि के शरबत को अत्यन्त दूषित कर देता है। भावार्थ- जिस प्रकार कषैला रस पीने से उसके पूर्व पिया हुआ मीठा रस दूषित हो जाता है उसी प्रकार क्रोधादि कषायों की तीव्रता से सम्यग्दर्शन रूप औषधि का रस दूषित हो जाता है- सम्यग्दर्शन नष्ट हो जाता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

39. ह.पु.124/23 40. ह.पु.127/23

भव, तन, भोग त्याग प्रेरणा

दुरन्ता बन्धुसंबन्धा, दुरन्ता भोगसंपदः।
दुरन्ताः कान्तिकायाश्च,तथापि स्वन्तधीर्जनः॥41॥

अर्थ – ये बन्धुजनों के सम्बन्ध दुरन्त–दुःखदायक है भोग सम्पदाएँ दुरन्त हैं, और कान्तिपूर्ण शरीर भी दुरन्त है फिर भी मूर्ख प्राणी इन्हें स्वन्त–सुखदायक समझता है।

एकत्व भावना

पुण्यपापकृदेकोऽयं,भोक्ता च सुखदुःखयोः।
जायते म्रियते चात्मा, तथापि स्वजनोन्मुखः॥ 42॥

अर्थ – वह जीव अकेला ही पुण्य और पाप करता है, अकेला ही सुख और दुख भोगता है, और अकेला ही पैदा होता है तथा मरता है फिर भी आत्मीयजनों के संग्रह करने में तत्पर रहता है।

41. ह.पु.35/26

42. ह.पु.36/26

आत्महित करने वाला धीर

त एव सुखिनो धीरास्, त एव स्वहितेस्थिताः।
विहाय भोगसंबन्धान्, ये स्थिता मोक्षवर्त्मनि ॥43॥

अर्थ – वे ही धीर, वीर मनुष्य सुखी हैं और वे ही आत्महित में लगे हुए हैं जो भोगों से सम्बन्ध छोड़कर मोक्षमार्ग में स्थित हैं।

देवों का चिंतन

भोगतृष्णोर्मिनिर्मग्ना, वयं तु गुरुकर्मकाः।
संसारसुखदुःखाप्तौ, मुहुः कुर्मो विवर्तनम् ॥ 44 ॥

अर्थ – हमारे कर्म बड़े वजनदार हैं इसलिए हम भोग तृष्णारूपी तरंगों में डूब रहे हैं तथा सुख-दुख की प्राप्ति में ही बार-बार परिभ्रमण करते-फिरते हैं।

43. ह.पु.37/26

44. ह.पु.38/26

जैन धर्म प्रशंसा

जैन एव हि सन्मार्गो, संयमस्तप एव च।
दर्शनं चापि चारित्रं, ज्ञानं चाशेषभासनम्॥ 45॥

अर्थ - एक जैन मार्ग ही सन्मार्ग है, उसी में संयम, तप, दर्शन, चरित्र और समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाला ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

परिवर्तनशील संसार

जायतेऽत्र नटस्येव, संसारे स्वामिभृत्ययोः।
पितृपुत्रकयोर्मातृ, भार्यर्योश्च विपर्ययः॥ 46॥

अर्थ - इस संसार में नट के समान स्वामी और सेवक, पिता और पुत्र, माता तथा स्त्री में विपरीतता देखी जाती है अर्थात् स्वामी सेवक हो जाता है, सेवक स्वामी हो जाता है, पिता पुत्र हो जाता है, पुत्र पिता हो जाता है, और माता स्त्री हो जाती है, स्त्री माता हो जाती है।

45. ह.पु.66/33

46. ह.पु.126/43

परिवर्तनशील संसार

घटीयन्त्रघटीजाले, जटिले कुटिले भवे।
उत्तराधर्यमायान्ति, जन्तवः सततभ्रमाः ॥ 47 ॥

अर्थ – यह संसार रहट में लगी घाटियों के जाल के समान जटिल तथा कुटिल है। इसमें निरन्तर भ्रमण करनेवाले जन्तु ऊँच–नीच अवस्था को प्राप्त होते ही हैं।

मनोविजेता ही कर्मविजेता

सुवशस्तु मनोहस्ती तपोमयरणक्षितौ।
पापसेनां निगृह्णाति साध्वाधोरणनोदितः ॥ 48 ॥

अर्थ – इसके विपरीत अच्छी तरह वश में किया हुआ मनरूपी हाथी साधुरूपी महावत के द्वारा प्रेरित हो तपरूपी रणभूमि में पापरूपी सेना को अच्छी तरह रोक लेता है।

47. ह.पु.127/43

48. ह.पु.196/43

दोष कथन से निधत्ति, निकाचित कर्म का बन्ध

सद्भूतस्यापि दोषस्य, परकीयस्य भाषणम्।
पापहेतुरमोघः स्या, दसद्भूतस्य किं पुनः ॥49॥

अर्थ – दूसरे के विद्यमान दोष का कथन करना भी पाप का कारण है फिर अविद्यमान दोष के कथन करने की तो बात ही क्या है? वह तो ऐसे पाप का कारण होता है जिसका फल कभी व्यर्थ नहीं जाता– अवश्य ही भोगना पड़ता है।

पापोपदेशी परभव में दुःखी

वक्ता श्रोता च पापस्य, यन्नात्र फलमश्नुते।
तदमोघममुत्रास्य,वृद्धयर्थमिति बुद्धयताम् ॥50॥

अर्थ – पाप का वक्ता और श्रोता जो इस लोक में उसका फल नहीं प्राप्त कर पाता है वह मानो परलोक में वृद्धि के लिए ही सुरक्षित रहता है ऐसा समझना चाहिए। भावार्थ– जिस पाप का फल वक्ता और श्रोता को इस जन्म में नहीं मिल पाता है उसका फल परभव में अवश्य मिलता है और ब्याज के साथ मिलता है।

49. ह.पु.153/45 50. ह.पु.156/45

पुण्य कथा सुनना कल्याणकारी और पाप कथा श्रवण अकल्याणकारी

वक्तुः श्रोतुश्च सद्बुद्धया यथा पुण्यमयी श्रुतिः।
श्रेयसे विपरीताय, तथा पापमयी श्रुतिः ॥51॥

अर्थ – सद्बुद्धि से पुण्यरूप कथाओं का सुनना वक्ता और श्रोता के लिए जिस प्रकार कल्याण का कारण माना गया है उसी प्रकार पापरूप कथाओं का सुनना उनके लिए अकल्याण का कारण माना गया है।

भाग्योदय में पुरुषार्थ सफलता

चतुरङ्गबलं कालः, पुत्रा मित्राणि पौरुषम्।
कार्यकृत्तावदेवात्र, यावद्दैवबलं परम् ॥52॥

अर्थ – जब-तक दैव का बल प्रबल है तभी तक चतुरंग सेना, काल, पुत्र, मित्र एवं पुरुषार्थ कार्यकारी होते हैं।

51. ह.पु.157/45 52. ह.पु.71/52

भाग्य क्षीण होने पर पुरुषार्थ निष्फलता

दैवे तु विकले काल, पौरुषादिर्निरर्थक:।
इति यत्कथ्यते विद्भिस्तत्तथ्यमिति नान्यथा ॥53॥

अर्थ – दैव के निर्बल होने पर काल तथा पुरुषार्थ आदि निरर्थक हो जाते हैं, यह जो विद्वानों द्वारा कहा जाता है वह सत्य ही कहा जाता है रंचमात्र भी अन्यथा नहीं है।

आत्म सिद्धि

अस्त्यात्मा परलोकोऽस्ति धर्माधर्मौ स्त एव च।
तयो:कर्तास्ति भोक्तास्ति चास्ति नास्तीति यत्पदम् ॥54॥

अर्थ – आत्मा है, परलोक है, धर्म और अधर्म है, यह जीव उनका कर्ता है, भोक्ता है तथा संसार के सब पदार्थ अस्तिरूप और नास्तिरूप है, यह कथन भी उसी दिव्यधनि में दिखाई देता था।

53. ह.पु.72/52

54. ह.पु.11/58

आत्म स्वतन्त्रता

स्वयं कर्म करोत्यामा, स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्राम्यति संसारे, स्वयं तस्माद्विमुच्यते॥ 55॥

अर्थ – यह जीव स्वयं कर्म करता है, स्वयं उसका फल भोगता है, स्वयं संसार में घूमता है और स्वयं उससे मुक्त होता है।

विद्या, वैराग्य से सिद्धि

अविद्यारागसंक्लिष्टो, बम्भ्रमीति भवार्णवे।
विद्यावैराग्यशुद्धः सन्, सिद्धयत्यविकलस्थितिः॥56॥

अर्थ – अविद्या तथा राग से संकिलष्ट होता हुआ संसार-सागर में बार-बार भ्रमण करता है और विद्या तथा वैराग्य से शुद्ध होता हुआ पूर्णस्वभाव में स्थित हो सिद्ध हो जाता है।

55. ह.पु.12/58

56. ह.पु.13/58

नीच गौत्र के कारण

सद्गुणाच्छादनं निन्दा, परेषां स्वस्य शंसनम्।
असद्गुणसमाख्यानं, नीचैर्गोत्रास्रवावहा:॥57॥

अर्थ – दूसरों के विद्यमान गुणों को छिपाना, अपनी प्रशंसा करना तथा अपने अविद्यमान गुणों का कथन करना ये नीच गोत्र कर्म के आस्रव हैं।

उच्च गौत्र के कारण

सनीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ, हेतुरुक्तविपर्यय:।
उच्चैर्गोत्रेऽन्तरायस्य, दानविघ्नादिकर्तृता॥58॥

अर्थ – विनयपूर्ण प्रवृत्ति करना तथा अहंकार नहीं करना उच्चगोत्र के आस्रव हैं और दान आदि में विघ्न करना अन्तराय कर्म के आस्रव है।

57. ह.पु.113/58

58. ह.पु.114/58

समाधिमरण शोक का विषय नहीं

मिथ्यादृष्टे: सतो जन्तो, र्मरणं शोचनाय हि।
न तु दर्शनशुद्धस्य, समाधिमरणं शुचे ॥59॥

अर्थ – मिथ्यादृष्टि जीव का मरण शोक के लिए होता है परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव का समाधि-मरण शोक के लिए नहीं होता।

समाधि प्रेरणा

मृतिर्जातस्य नियता, संसृतौ नियतेर्वशात्।
सा समाधियुजो भूया, दुपसर्गेऽपि देहिनः ॥60॥

अर्थ – संसार का नियम ही ऐसा है कि जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है, अतः सदा यह भावना रखनी चाहिए कि उपसर्ग आने पर भी समाधिपूर्वक ही मरण हो।

59. ह.पु.97/61

60. ह.पु.98/61

समाधिमरण प्रशंसा

धन्याः शिखिशिखाजाल, कवलीकृतविग्रहाः।
अपि साधु समाधाना, ये त्यजन्ति कलेवरम्॥61॥

अर्थ – वे मनुष्य धन्य हैं जो अग्नि की शिखाओं के समूह से ग्रस्त शरीर होने पर भी उत्तम समाधि से शरीर छोड़ते हैं।

प्रशंसनीय तप और मरण का कथन

तपो वा मरणं वापि, शस्तं स्वपरसौख्यकृत्।
न च द्वैपायनस्येव, स्वपरासुखकारणम्॥62॥

अर्थ – जो तप और मरण निज तथा पर को सुख करनेवाला है वही उत्तम है– प्रशंसनीय है, जो तप द्वैपायन के समान निज और पर को दुःख का कारण है वह उत्तम नहीं।

61. ह.पु.99/61

62. ह.पु.100/61

हिंसा का फल भव-भव में

परस्यापकृतिं कुर्वन्, कुर्यादेकत्र जन्मनि।
पापी परवधं स्वस्य, जन्तुर्जन्मनि जन्मनि॥63॥

अर्थ - दूसरे का अपकार करने वाला पापी मनुष्य, दूसरे का वध तो एक जन्म में कर पाता है पर उसके फलस्वरूप अपना वध जन्म-जन्म में करता है।

कषाय संसार वर्द्धक

कषायवशगः प्राणी, हन्ता स्वस्य भवे-भवे।
संसारवर्धनोऽन्येषां, भवेद्वा वधको न वा॥64॥

अर्थ - यह प्राणी दूसरों का वध कर सके या न कर सके परन्तु कषाय के वशीभूत हो अपना वध तो भव-भव में करता है तथा अपने संसार को बढ़ाता है।

63. ह.पु.101/61

64. ह.पु.102/61

क्रोधी निज अपकार करे

परं हन्मीति संध्यातं, लोहपिण्डमुपाददत्।
दहत्यात्मानमेवादौ, कषायवशगस्तथा ॥ 65 ॥

अर्थ – जिस प्रकार तपाये हुए लोहे के पिण्ड को उठानेवाला मनुष्य पहले अपने–आप को जलाता है पश्चात् दूसरे को जला सके अथवा नहीं। उसी प्रकार कषाय के वशीभूत हुआ प्राणी 'दूसरे का घात करूँ' इस विचार के उत्पन्न होते ही पहले अपने आप का घात करता है पश्चात् दूसरे का घात कर सके या नहीं कर सके।

मोह शत्रु महाबैरी

जन्तोः को वापराधोऽत्र, स्वकर्मवशवर्तिनः।
यत्नवानपि यज्जन्तु, र्मोह्यते मोहवैरिणा ॥ 66 ॥

अर्थ – अथवा इस संसार में अपने कर्म के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले प्राणी का क्या अपराध है? क्योंकि यत्न करनेवाले प्राणी भी मोहरूपी वैरी के द्वारा मोह को प्राप्त करता है।

65. ह.पु.103/61

66. ह.पु.105/61

स्वोपकारी सर्वश्रेष्ठ

अपाक्रियेतापि परः,कथंचिददतितिक्षुणा।
उपक्रियेत यद्यात्मा, तथेहपरलोकयोः॥ 67॥

अर्थ – असहनशील पुरुष दूसरे का अपकार किसी तरह कर भी सकता है परन्तु उसे अपने–आपका तो इस लोक और परलोक में उपकार ही करना चाहिए।

क्षमाधारण की प्रेरणा

परदुःखविधानेन, यत्स्वदुःखपरम्परा।
अवश्यम्भाविनी तस्मात्,तिक्षैवाति भाव्यताम्॥ 68॥

अर्थ – क्योंकि दूसरों को दुःख पहुँचाने से अपने आपको भी दुःख की परम्परा प्राप्त होती है, इसलिए क्षमा अवश्यम्भावी है– अवश्य ही धारण करने योग्य है ऐसा निश्चय करना चाहिए।

67. ह.पु.106/61 68. ह.पु.107/61

अपना कर्म ही सुख–दुख देता

सुखं वा यदि वा दुःखं, दत्ते कः कस्य संसृतौ।
मित्रं वा यदि वामित्रः, स्वकृतं कर्म तत्त्वतः ॥69॥

अर्थ – संसार में कौन किसके लिए सुख देता है? अथवा कौन किसके लिए दुःख देता है? और कौन किसका मित्र है अथवा कौन किसका शत्रु है? यथार्थ में अपना किया हुआ कार्य ही सुख अथवा दुःख देता है।

निज कर्मानुसार फल

यद्येन यादृशं कर्म, संसारे समुपार्जितम्।
तत्तेन तादृशं भ्रात, र्नियमादनुभूयते ॥ 70॥

अर्थ – संसार में जिसने जैसा कर्म उपार्जन किया है, हे भाई! नियम से वैसा ही फल भोगना पड़ता है।

69. ह.पु.51/62

70. ह.पु.48/56

देवगण सुख देने एवं दुख हरने में असमर्थ

शक्नुयुः सुखमाहर्तु, हर्तु वा दुःखमङ्गिनाम्।
देवा यदि ततो घ्नन्ति मृत्युदुःखं निजं न किम्॥71॥

अर्थ – देव, यदि दूसरे प्राणियों के लिए सुख देने और दुःख हरने में समर्थ है तो फिर अपना ही मृत्युरूपी दुःख क्यों नहीं नष्ट कर लेते हैं।

❃❃❃

71. ह.पु.49/56

पूज्य क्षुल्लिका 105 सिद्धश्री माता जी

पूर्व नाम	:	बा. ब्र. प्रिया दीदी
माता का नाम	:	श्रीमति मीना जैन
पिता का नाम	:	श्रीमान सुभाष जैन
जन्म स्थान	:	हटा, जिला- दमोह (म.प्र.)
जन्म तिथि	:	27 जुलाई 1993
लौकिक शिक्षा	:	बी.ए. प्रथम वर्ष
संघ प्रवेश	:	10 जून 2011
ब्रह्मचर्य व्रत	:	10 फरवरी 2009
प्रतिमा धारण	:	पटेरीया जी
दीक्षा गुरु	:	प.पू. आचार्य श्री विभवसागर जी महाराज
क्षुल्लिका दीक्षा	:	16 नवम्बर 2016, जैतहरी, जिला-अनूपपुर (म.प्र.)
विशेष	:	मुनि श्री सम्पन्न कीर्ति जी एवं आ. प्रज्ञा श्री माताजी का सत्सल्लेखना समाधि मरण कराने का अनुपमेय अनुभव

सारस्वत श्रमण! नय चक्रवर्ती! श्रमणाचार्य डॉ.

108 श्री विभवसागरजी महाराज

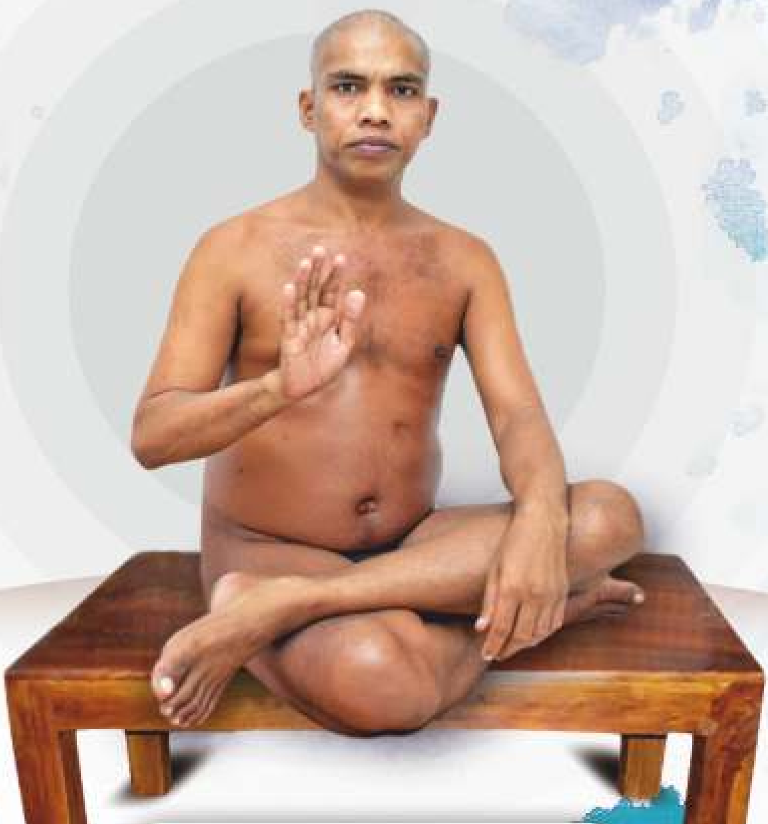

जन्म	-	23 अक्टूबर 1976, दीपावली
वैराग्य	-	9 अक्टूबर 1994 को ब्र. व्रत
क्षुल्लक दीक्षा	-	28 जनवरी 1995, मंगलगिरि, सागर (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	-	23 फरवरी 1996, देवेन्द्र नगर (पन्ना) म.प्र.
मुनि दीक्षा	-	14 दिसम्बर 1998, अतिशय क्षेत्र बरासो, भिण्ड (म.प्र.)
दीक्षा गुरु	-	गणाचार्य 108 श्री विरागसागरजी महाराज
आचार्य पद	-	31 मार्च 2007, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)